

## अध्याय - १४



नांदेड़ के रतनजी वाडिया, संत मौला साहेब, दक्षिणा मीमांसा।

श्री साईबाबा के वचनों और कृपा द्वारा किस प्रकार असाध्य रोग भी निर्मूल हो गये, इसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अब बाबा ने किस प्रकार रतनजी वाडिया को अनुगृहीत किया तथा किस प्रकार उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, इसका वर्णन इस अध्याय में होगा।

इस संत की जीवनी सर्व प्रकार से प्राकृतिक और मधुर है। उनके अन्य कार्य भी जैसे भोजन, चलना-फिरना तथा स्वाभाविक अमृतोपदेश बड़े ही मधुर हैं। वे आनन्द के अवतार हैं। इस परमानंद का उन्होंने अपने भक्तों को भी रसास्वादन कराया और इसीलिये उन्हें उनकी चिरस्मृति बनी रही। भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म और कर्तव्यों की अनेक कथाएँ भक्तों को उनके द्वारा प्राप्त हुईं, जिससे वे सत्त्व मार्ग का अवलम्बन कर सके। बाबा की सदैव यही इच्छा थी कि लोग संसार में सुखी जीवन व्यतीत करें और वे सदैव जागरूक रहकर अपने जीवन का परम लक्ष्य, आत्मानुभूति (या ईश्वरदर्शन) अवश्य प्राप्त करें। पिछले जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही यह देह प्राप्त हुई है और उसकी सार्थकता तभी है, जब उसकी सहायता से हम इस जीवन में भक्ति और मोक्ष प्राप्त कर सकें। हमें अपने अन्त और जीवन के लक्ष्य के हेतु सदैव सावधान तथा तत्पर रहना चाहिए।

यदि तुम नित्य श्री साई की लीलाओं का श्रवण करोगे तो तुम्हें उनका सदैव दर्शन होता रहेगा। दिनरात उनका हृदय में स्मरण करते रहो। इस प्रकार आचरण करने से मन की चंचलता शीघ्र नष्ट हो जायेगी। यदि इसका निरंतर अभ्यास किया गया तो तुम्हें चैतन्य-धन से अभिन्नता प्राप्त हो जायेगी।

## नांदेड़ के रतनजी

अब हम इस अध्याय की मूल कथा का वर्णन करते हैं। नांदेड़ (निजाम रियासत) में रतनजी शापुरजी वाडिया नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी रहते थे। उन्होंने व्यापार में यथेष्ट धनराशि संग्रह कर ली थी। उनके पास अतुलनीय सम्पत्ति, खेत और चरोहर तथा कई प्रकार के पशु, घोड़े, गधे, खच्चर आदि और गाड़ियाँ भी थीं। वे अत्यन्त भाग्यशाली थे। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे अधिक सुखी और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे, परन्तु यथार्थ में वे वैसे न थे। विधाता की रचना कुछ ऐसी विचित्र है कि इस संसार में पूर्ण सुखी कोई नहीं और धनाढ्य रतनजी भी इसके अपवाद न थे। वे परोपकारी तथा दानशील थे। वे दीनों को भोजन और वस्त्र वितरण करते तथा सभी लोगों की अनेक प्रकार से सहायता किया करते थे। उन्हें लोग अत्यन्त सुखी समझते थे। किन्तु दीर्घ काल तक संतान न होने के कारण उनके हृदय में संताप अधिक था। जिस प्रकार प्रेम तथा भक्तिरहित कीर्तन, वाद्यरहित संगीत, यज्ञोपवीतरहित ब्राह्मण, व्यावहारिक ज्ञानरहित कलाकार, पश्चात्तापरहित तीर्थयात्रा और कंठमाला (मंगल सूत्र) रहित अलंकार, उत्तम प्रतीत नहीं होते, उसी प्रकार संतानरहित गृहस्थ का घर भी सूना ही रहता है। रतनजी सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे। वे मन ही मन कहते, “क्या ईश्वर की मुझे पर कभी दया न होगी? क्या मुझे कभी पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी?” इसके लिये वे सदैव उदास रहते थे। उन्हें भोजन से भी अरुचि हो गई। पुत्र की प्राप्ति कब होगी, यही चिन्ता उन्हें सदैव घेरे रहती थी। उनकी दासगणू महाराज पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने अपना हृदय उनके सम्मुख खोल दिया, तब उन्होंने श्रीसाई समर्थ की शरण जाने और उनसे संतान-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का परामर्श दिया। रतनजी को भी यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने शिरडी जाने का निश्चय किया। कुछ दिनों के उपरांत वे शिरडी आये और बाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे। उन्होंने एक सुन्दर हार बाबा को पहना कर बहुत से फल-फूल भेंट किये। तत्पश्चात् आदर सहित बाबा के पास बैठकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, “अनेक आपत्तिग्रस्त लोग आप के पास आते हैं और आप उनके कष्ट तुरंत दूर कर देते हैं। यही कीर्ति सुनकर मैं भी बड़ी आशा से आपके श्रीचरणों में आया हूँ। मुझे बड़ा भरोसा हो गया है, कृपया मुझे निराश न कीजिये।” श्रीसाईबाबा ने उनसे पाँच रुपये दक्षिणा माँगी, जो वे देना ही चाहते थे। परन्तु बाबा ने पुनः कहा, “मुझे तुमसे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये केवल शेष रुपये ही दो।” यह सुनकर रतनजी असमंजस में पड़ गये। बाबा के कथन का अभिप्राय उनकी समझ में न आया। वे सोचने लगे कि यह “शिरडी

आने का मेरा प्रथम ही अवसर है और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्हें तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।” वे यह पहेली हल न कर सके। वे बाबा के चरणों के पास ही बैठे रहे तथा उन्हें शेष दक्षिणा अर्पित कर दी। उन्होंने अपने आगमन का हेतु बतलाया और पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। बाबा को दया आ गई। वे बोले, “चिन्ता त्याग दो, अब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त हो गये हैं।” इसके बाद बाबा ने उदी देकर अपना वरद हस्त उनके मस्तक पर रखकर कहा, “अल्लाह तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा।”

बाबा की अनुमति प्राप्त कर रतनजी नांदेड़ लौट आये और शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे दासगणू को सुनाया। रतनजी ने कहा, “सब कार्य ठीक ही रहा। बाबा के शुभ दर्शन हुए; उनका आशीर्वाद और प्रसाद भी प्राप्त हुआ; परन्तु वहाँ की एक बात समझ में नहीं आई। वहाँ पर बाबा ने कहा था कि “मुझे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।” कृपया समझाइये कि इसका क्या अर्थ है? इससे पूर्व मैं शिरडी कभी भी नहीं गया। फिर बाबा को वे रुपये कैसे प्राप्त हो गये, जिसका उन्होंने उल्लेख किया?” दासगणू के लिये भी यह एक पहेली ही थी। बहुत दिनों तक वे इस पर विचार करते रहे। कई दिनों के पश्चात् उन्हें स्मरण हुआ कि कुछ दिन पहले रतनजी ने एक यवन संत मौला साहेब को अपने घर आतिथ्य के लिये निमंत्रित किया था तथा इसके निमित्त उन्होंने कुछ धन व्यय किया था। मौला साहेब नांदेड़ के एक प्रसिद्ध सन्त थे, जो कुली का काम किया करते थे। जब रतनजी ने शिरडी जाने का निश्चय किया था, उसके कुछ दिन पूर्व ही मौला साहेब अनायास ही रतनजी के घर आये। रतनजी उनसे अच्छी तरह परिचित थे तथा उनसे प्रेम भी अधिक करते थे। इसलिये उनके सत्कार में उन्होंने एक छोटे से जलपान की व्यवस्था भी की थी। दासगणू ने रतनजी से आतिथ्य के खर्च की सूची माँगी और यह जानकर सबको आश्चर्य हुआ कि खर्चा ठीक तीन रुपये चौदह आने ही हुआ था; न इससे कम था और न अधिक। सबको बाबा की त्रिकालज्ञता विदित हो गई। यद्यपि वे शिरडी में विराजमान थे, परन्तु शिरडी के बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। यथार्थ में बाबा भूत, भविष्यत् और वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता और प्रत्येक आत्मा तथा हृदय के साथ संबद्ध थे। अन्यथा मौला साहेब के स्वागतार्थ खर्च की गई रकम बाबा को कैसे विदित हो सकती थी?

रतनजी इस उत्तर से सन्तुष्ट हो गये और उनकी साईचरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो गई। उपयुक्त समय के पश्चात् उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे उनके हर्ष का पारावार न रहा। कहते हैं कि उनके यहाँ बारह संतानें हुईं; जिनमें से केवल चार शेष रहीं।

इस अध्याय के नीचे लिखा है कि बाबा ने रावबहादुर हरी विनायक साठे को उनकी पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरा ब्याह करने पर पुत्ररत्न की प्राप्ति बतलाई। रावबहादुर साठे ने द्वितीय विवाह किया। प्रथम दो कन्यायें हुईं, जिससे वे बड़े निराश हुए, परन्तु तृतीय बार पुत्र प्राप्त हुआ। इस तरह बाबा के वचन सत्य निकले और वे सन्तुष्ट हो गये।

### दक्षिणा मीमांसा

दक्षिणा के संबंध में कुछ अन्य बातों का निरूपण कर हम यह अध्याय समाप्त करेंगे। यह तो विदित ही है कि जो लोग बाबा के दर्शन को आते थे, उनसे बाबा दक्षिणा लिया करते थे। यहाँ किसी को भी शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब बाबा फकीर और पूर्ण विरक्त थे तो क्या उनका इस प्रकार दक्षिणा ग्रहण करना और कांचन को महत्व देना उचित था? अब इस प्रश्न पर हम विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

बहुत काल तक बाबा भक्तों से कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे। वे जली हुई दियासलाइयाँ एकत्रित कर अपनी जेब में भर लेते थे। चाहे भक्त हो या और कोई; वे कभी किसी से कुछ भी नहीं माँगते थे। यदि किसी ने उनके सामने एक पैसा रख दिया तो वे उसे स्वीकार करके उससे तम्बाखू अथवा तेल आदि खरीद लिया करते थे। वे प्रायः बीड़ी या चिलम पिया करते थे। कुछ लोगों ने सोचा कि बिना कुछ भेंट किये सन्तों का दर्शन उचित नहीं है। इसलिये वे बाबा के सामने पैसे रखने लगे। यदि एक पैसा होता तो वे उसे जेब में रख लेते और यदि दो पैसे हुए तो तुरन्त उसमें से एक पैसा वापस कर देते थे। जब बाबा की कीर्ति दूर-दूर तक फैली और लोगों के झुण्ड के झुण्ड बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, तब बाबा ने उनसे दक्षिणा लेना आरम्भ कर दिया। श्रुति कहती है कि स्वर्ण मुद्रा के अभाव में भगवत्पूजन भी अपूर्ण है। अतः जब ईश्वर-पूजन में मुद्रा आवश्यक है तो फिर सन्तपूजन में क्यों न हो? इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि ईश्वर, राजा, सन्त या गुरु के दर्शन, अपनी सामर्थ्यानुसार बिना कुछ अर्पण किये, कभी न करना चाहिये। उन्हें क्या भेंट दी जाये? अधिकतर मुद्रा या धन। इस सम्बन्ध में उपनिषदों में वर्णित नियमों का अवलोकन करें। बृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि दक्ष प्रजापति ने देवता, मनुष्य और राक्षसों के सामने एक अक्षर ‘द’ का उच्चारण किया। देवताओं ने इसका अर्थ लगाया कि उन्हें दम अर्थात् आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना चाहिये। मनुष्यों ने समझा कि उन्हें दान का अभ्यास करना चाहिए तथा राक्षसों ने सोचा कि हमें दया का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों को दान की सलाह दी गई।

तैत्तिरीय उपनिषद् में दान व अन्य सत्व गुणों को अभ्यास में लाने की बात कही गयी है। दान के संबंध में लिखा है: - “विश्वासपूर्वक दान करो, उसके बिना दान व्यर्थ है। उदार हृदय तथा विनम्र बन कर, आदर और सहानुभूतिपूर्वक दान करो।” भक्तों को कांचन-त्याग का पाठ पढ़ाने तथा उनकी आसक्ति दूर करने और चित्त शुद्ध कराने के लिए ही बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे। परन्तु उनकी एक विशेषता भी थी। बाबा कहा करते थे कि “जो कुछ भी मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे उसके शत गुणोंसे अधिक वापस करना पड़ता है।” इसके अनेक प्रमाण हैं।

### एक घटना

श्री. गणपतराव बोडस, प्रसिद्ध कलाकार, अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं कि बाबा के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने अपने रुपयोंकी थैली उनके सामने उँडेल दी। श्री. बोडस लिखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में फिर उन्हें धन का अभाव कभी न हुआ तथा प्रचुर मात्रा में लाभ ही होता रहा। इसका एक भिन्न अर्थ भी है। अनेकों बार बाबा ने किसी प्रकार की दक्षिणा स्वीकार भी नहीं की। इसके दो उदाहरण हैं। बाबा ने प्रो.सी.के. नारके से १५ रुपये दक्षिणा माँगी। वे प्रत्युत्तर में बोले कि मेरे पास तो एक पाई नहीं है। तब बाबा ने कहा कि “मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है, परन्तु तुम योगवासिष्ठ का अध्ययन तो करते हो, उसमें से ही दक्षिणा दो।” यहाँ दक्षिणा का अर्थ है - पुस्तक से शिक्षा ग्रहण कर हृदयंगम करना, जो कि बाबा का निवासस्थान है।

(२) एक दूसरी घटना में, उन्होंने एक महिला श्रीमती आर.ए. तर्खड से छः रुपये दक्षिणा माँगी। महिला बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उनके पास देने को कुछ भी न था। उनके पति ने उन्हें समझाया कि बाबा का अर्थ तो षड्रिपुओं से है, जिन्हें बाबा को समर्पित कर देना चाहिए। बाबा इस अर्थ से सहमत हो गये।

यह ध्यान देने योग्य है कि बाबा के पास दक्षिणा के रूप में बहुत-सा द्रव्य एकत्रित हो जाता था। सब द्रव्य वे उसी दिन व्यय कर देते और दूसरे दिन फिर सदैव की भाँति निर्धन बन जाते थे। जब उन्होंने महासमाधि ली तो १० वर्ष तक हजारों रुपया दक्षिणा मिलने पर भी उनके पास स्वल्प राशि ही शेष थी।

संक्षेप में दक्षिणा लेने का मुख्य ध्येय तो भक्तों को केवल शुद्धीकरण का पाठ ही सिखाना था।

### दक्षिणा का मर्म

ठाणे के श्री. बी.व्ही. देव, (सेवा-निवृत्त प्रान्त मामलतदार, जो बाबा के परम भक्त थे) ने इस विषय पर एक लेख (साई लीला पत्रिका, भाग ७ पृष्ठ ६२६) अन्य विषयों सहित प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार है: - “बाबा प्रत्येक से दक्षिणा नहीं लेते थे। यदि बाबा के बिना माँगे किसी ने दक्षिणा भेंट की तो वे कभी तो स्वीकार कर लेते और कभी अस्वीकार भी कर देते थे। वे केवल भक्तों से ही कुछ माँगा करते थे। उन्होंने उन लोगों से कभी कुछ न माँगा, जो सोचते थे कि बाबा के माँगने पर ही दक्षिणा देंगे। यदि किसी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध दक्षिणा दे दी तो वे वहाँ से उसे उठाने को कह देते थे। वे यथायोग्य राशि भक्तों की इच्छा, भक्ति और सुविधा के अनुसार ही उनसे माँगा करते थे। स्त्री और बालकों से भी वे दक्षिणा ले लेते थे। उन्होंने सभी धनाढ्यों या निर्धनों से कभी दक्षिणा नहीं माँगी। बाबा के माँगने पर भी जिन्होंने दक्षिणा न दी, उनसे वे कभी क्रोधित नहीं हुए। यदि किसी मित्र द्वारा उन्हें दक्षिणा भिजवाई गई होती और उसका उसे स्मरण न रहता तो बाबा किसी न किसी प्रकार उसे स्मरण कराकर वह दक्षिणा ले लेते थे। कुछ अवसरों पर वे दक्षिणा की राशि में से कुछ अंश लौटा भी देते और देने वालों को संभाल कर रखने या पूजन में रखने के लिये कह देते थे। इससे दाता या भक्त को बहुत लाभ पहुँचता था। यदि किसी ने अपनी इच्छित राशि से अधिक भेंट की तो वे वह अधिक राशि लौटा देते थे। किसी-किसी से तो वे उसकी इच्छित राशि से भी अधिक माँग बैठते थे और यदि उसके पास नहीं होती तो दूसरे से उधार लेने या दूसरों से माँगने को भी कहते थे। किसी-किसी से तो दिन में ३-४ बार दक्षिणा माँगा करते थे।

दक्षिणा में एकत्रित राशि में से बाबा अपने लिये बहुत थोड़ा खर्च किया करते थे। जैसे- चिलम पीने की तंबाखू और धूनी के लिए लकड़ियाँ मोल लेने के लिये आदि। शेष अन्य व्यक्तियों को विभिन्न राशियों में भिक्षास्वरूप दे देते थे। शिरडी संस्थान की समस्त सामग्रियाँ राधाकृष्णमाई की प्रेरणा से ही धनी भक्तों ने एकत्र की थीं। अधिक मूल्यवाले पदार्थ लाने वालों से बाबा अति क्रोधित हो जाते और अपशब्द कहने लगते थे। उन्होंने श्री नानासाहेब चाँदोरकर से कहा कि मेरी सम्पत्ति केवल एक कौपीन और टमरेल है। लोग बिना कारण ही मूल्यवान् पदार्थ लाकर मुझे दुःखित करते हैं। कामिनी और कांचन मार्ग में दो मुख्य बाधाएँ हैं और बाबा ने इसके लिए दो पाठशालायें खोली थीं। यथा-दक्षिणा ग्रहण करना और राधाकृष्णमाई के यहाँ भोजना-इस बात की परीक्षा

करने के लिये कि क्या उनके भक्तों ने इन आसक्तियों से छुटकारा पा लिया है या नहीं। इसीलिये जब कोई आता तो वे उनसे दक्षिणा माँगते और उनसे शाला में (राधाकृष्णमाई के घर) जाने को कहते। यदि वे इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वे कामिनी और कांचन की आसक्ति से विरक्त हैं तो बाबा की कृपा और आशीर्वाद से उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही हो जाती थी।

श्री देव ने गीता और उपनिषद् से घटनाएँ उद्धृत की हैं और कहते हैं कि किसी तीर्थस्थान में किसी पूज्य सन्त को दिया हुआ दान दाता को बहुत कल्याणकारी होता है। शिरडी और शिरंडी के प्रमुख देवता साईबाबा से पवित्र और है ही क्या?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



## अध्याय - १५



नारदीय कीर्तन पद्धति, श्री. चोलकर की शक्ररहित चाय, दो छिपकलियाँ।

पाठकों को स्मरण होगा कि छठे अध्याय के अनुसार शिरडी में राम नवमी उत्सव मनाया जाता था। यह कैसे प्रारम्भ हुआ और पहले वर्ष ही इस अवसर पर कीर्तन करने के लिये एक अच्छे हरिदास के मिलने में क्या-क्या कठिनाइयाँ हुई, इसका भी वर्णन वहाँ किया गया है। इस अध्याय में दासगणू की

कीर्तन पद्धति का वर्णन होगा।

### नारदीय कीर्तन पद्धति

बहुधा हरिदास कीर्तन करते समय एक लम्बा अंगरखा और पूरी पोशाक पहनते हैं। वे सिर पर फेंटा या साफा बाँधते हैं और एक लम्बा कोट तथा भीतर कमीज, कन्धे पर गमछा और सदैव की भाँति एक लम्बी धोती पहनते हैं। एक बार गाँव में कीर्तन के लिये जाते हुए दासगणू भी उपर्युक्त रीति से सज-धज कर बाबा को प्रणाम करने पहुँचे। बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे, “अच्छा! दूल्हा राजा! इस प्रकार बनठन कर कहाँ जा रहे हो?” उत्तर मिला कि “कीर्तन के लिये।” बाबा ने पूछा कि कोट, गमछा और फेंटे इन सब की आवश्यकता ही क्या है? इनको अभी मेरे सामने ही उतारो। इस शरीर पर इन्हें धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दासगणू ने तुरन्त ही वस्त्र उतार कर बाबा के श्रीचरणों पर रख दिये। फिर कीर्तन करते समय दासगणू ने इन वस्त्रों को कभी नहीं पहना। वे सदैव कमर से ऊपर अंग खुले रखकर हाथ में करताल और गले में हार पहन कर ही कीर्तन किया करते थे। यह पद्धति यद्यपि हरिदासों द्वारा अपनाई गई पद्धति के अनुरूप नहीं है, परन्तु फिर भी शुद्ध तथा पवित्र है। कीर्तन पद्धति के जन्मदाता नारद मुनि कटि से ऊपर सिर तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। वे एक हाथ में वीणा ही लेकर हरि-कीर्तन करते हुए त्रैलोक्य में घूमते थे।

## श्री चोलकर की शक्कररहित चाय

बाबा की कीर्ति पूना और अहमदनगर जिलों में फैल चुकी थी, परन्तु श्री नानासाहेब चांदोरकर के व्यक्तिगत वार्तालाप तथा दासगणू के मधुर कीर्तन द्वारा बाबा की कीर्ति कोकण (बम्बई प्रांत) में भी फैल गई। इसका श्रेय केवल श्री दासगणू को ही है। भगवान् उन्हें सदैव सुखी रखे। उन्होंने अपने सुन्दर प्राकृतिक कीर्तन से बाबा को घर-घर पहुँचा दिया। श्रोताओं की रुचि प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसी को हरिदासों की विद्वत्ता, किसी को भाव, किसी को गायन, तो किसी को चुटकुले तथा किसी को वेदान्त-विवेचन और किसी को उनकी मुख्य कथा रुचिकर प्रतीत होती है। परन्तु ऐसे बिरले ही हैं, जिनके हृदय में संत-कथा या कीर्तन सुनकर श्रद्धा और प्रेम उमड़ता हो। श्री दासगणू का कीर्तन श्रोताओं के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता था। एक ऐसी घटना नीचे दी जाती है।

एक समय ठाणे के श्रीकौपीनेश्वर मन्दिर में श्री दासगणू कीर्तन और श्रीसाईबाबा का गुणगान कर रहे थे। श्रोताओं में एक चोलकर नामक व्यक्ति, जो ठाणे के दीवानी न्यायालय में एक अस्थायी कर्मचारी था, भी वहाँ उपस्थित था। दासगणू का कीर्तन सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और मन ही मन बाबा को नमन कर प्रार्थना करने लगा कि “हे बाबा! मैं एक निर्धन व्यक्ति हूँ और अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण भी भली भाँति करने में असमर्थ हूँ। यदि मैं आपकी कृपा से विभागीय परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो आपके श्रीचरणों में उपस्थित होकर आपके निमित्त मिश्री का प्रसाद बाँटूँगा”। भाग्यने पल्टो खाया और चोलकर परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। उसकी नौकरी भी स्थायी हो गई। अब केवल संकल्प ही शेष रहा। “शुभस्य शीघ्रम्।” श्री. चोलकर निर्धन तो था ही और उसका कुटुम्ब भी बड़ा था। अतः वह शिरडी यात्रा के लिये मार्ग-व्यय जुटाने में असमर्थ हुआ। ठाणे जिले में एक कहावत प्रचलित है कि “नाणे घाट व सह्याद्री पर्वत श्रेणियाँ कोई भी सरलतापूर्वक पार कर सकता है, परन्तु गरीब को उंबर घाट (गृह-चक्कर) पार करना बड़ा ही कठिन होता है।” श्री. चोलकर अपना संकल्प शीघ्रतिशीघ्र पूरा करने के लिये उत्सुक था। उसने मितव्ययी बनकर, अपना खर्च घटाकर पैसा बचाने का निश्चय किया। इस कारण उसने बिना शक्कर की चाय पीना प्रारम्भ किया और इस तरह कुछ द्रव्य एकत्रित कर वह शिरडी पहुँचा। उसने बाबा का दर्शन कर उनके चरणों पर गिरकर नारियल भेंट किया तथा अपने संकल्पानुसार श्रद्धा से मिश्री वितरित की और बाबा से बोला कि आपके दर्शन से मेरे हृदय को अत्यंत प्रसन्नता

हुई है। मेरी समस्त इच्छायें तो आपकी कृपादृष्टि से उसी दिन पूर्ण हो चुकी थीं। मसजिद में श्री. चोलकर का आतिथ्य करने वाले श्री बापूसाहेब जोग भी वहीं उपस्थित थे। जब वे दोनों वहाँ से जाने लगे तो बाबा जोग से इस प्रकार कहने लगे कि “अपने अतिथि को चाय के प्याले अच्छी तरह शक्कर मिलाकर देना।” इन अर्थपूर्ण शब्दों को सुनकर श्री. चोलकर का हृदय भर आया और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके नेत्रों से अश्रु-धाराएँ प्रवाहित होने लगीं और वे प्रेम से विह्वल होकर श्रीचरणों पर गिर पड़े। श्री. जोग को “अधिक शक्कर सहित चाय के प्याले अतिथि को दो” यह विचित्र आज्ञा सुनकर बड़ा कुतूहल हो रहा था कि यथार्थ में इसका अर्थ क्या है? बाबा का उद्देश्य तो श्री. चोलकर के हृदय में केवल भक्ति का बीजारोपण करना ही था। बाबा ने उन्हें संकेत किया था कि वे शक्कर छोड़ने के गुप्त निश्चय से भली भाँति परिचित हैं।

बाबा का यह कथन था कि “यदि तुम श्रद्धापूर्वक मेरे सामने हाथ फैलाओगे तो मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा। यद्यपि मैं शरीर से तो यहाँ हूँ, परन्तु मुझे सात समुद्रों के पार भी घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान है। मैं तुम्हारे हृदय में विराजित, तुम्हारे अन्तरस्थ ही हूँ। जिसका तुम्हारे तथा समस्त प्राणियों के हृदय में वास है, उसकी ही पूजा करो। धन्य और सौभाग्यशाली वही हैं, जो मेरे सर्वव्यापी स्वरूप से परिचित हैं।” बाबा ने श्री. चोलकर को कितनी सुन्दर तथा महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की।

## दो छिपकलियों का मिलन

अब हम दो छोटी छिपकलियों की कथा के साथ ही यह अध्याय समाप्त करेंगे। एक बार बाबा मसजिद में बैठे थे कि उसी समय एक छिपकली चिकचिक करने लगी। कौतूहलवश एक भक्त ने बाबा से पूछा कि “छिपकली के चिकचिकाने का क्या कोई विशेष अर्थ है? यह शुभ है या अशुभ?” बाबा ने कहा कि “इस छिपकली की बहन आज औरंगाबाद से यहाँ आने वाली है। इसलिये यह प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही है।” वह भक्त बाबा के शब्दों का अर्थ न समझ सका। इसलिये वह चुपचाप वहीं बैठा रहा।

इसी समय औरंगाबाद से एक आदमी घोड़े पर बाबा के दर्शनार्थ आया। वह तो आगे जाना चाहता था, परन्तु घोड़ा अधिक भूखा होने के कारण बढ़ता ही न था। तब उसने चना लाने को एक थैली निकाली और धूल झटकारने के लिये उसे भूमि पर फटकारा तो उसमें से एक छिपकली निकली और सब के देखते-देखते ही वह दीवार

पर चढ़ गई। बाबा ने प्रश्न करने वाले भक्त से ध्यानपूर्वक देखने को कहा। छिपकली तुरन्त ही गर्व से अपनी बहन के पास पहुँच गई थी। दोनों बहनें बहुत देर तक एक दूसरे से मिलीं और परस्पर चुंबन व आलिंगन कर चारों ओर घूमघूम कर प्रेमपूर्वक नाचने लगीं। कहाँ शिरडी और कहाँ औरंगाबाद? किस प्रकार एक आदमी घोड़े पर सवार होकर, थैली में छिपकली को लिये हुए वहाँ पहुँचता है और बाबा को उन दो बहनों की भेंट का पता कैसे चल जाता है - यह सब घटना बहुत आश्चर्यजनक है और बाबा की सर्वव्यापकता की द्योतक है।

### शिक्षा

जो कोई इस अध्याय का ध्यानपूर्वक पठन और मनन करेगा, साईकृपा से उसके समस्त कष्ट दूर हो जायेंगे और वह पूर्ण सुखी बनकर शांति को प्राप्त होगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



## अध्याय - १६-१७

### शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति

इन दो अध्यायों में एक धनाढ्य ने किस प्रकार साईबाबा से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहा था, उसका वर्णन है।

### पूर्व विषय



गत अध्याय में श्री चोलकर का अल्प संकल्प किस प्रकार पूर्णतः फलीभूत हुआ, इसका वर्णन किया गया है। उस कथा में श्रीसाईबाबा ने दर्शाया था कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक अर्पित की हुई तुच्छ वस्तु भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, परन्तु यदि वह अहंकारसहित भेंट की गई तो वह अस्वीकृत कर दी जाती थी। पूर्ण सच्चिदानन्द होने के कारण वे बाह्य आचार-विचारों को विशेष महत्त्व न देते थे और विनम्रता और आदरसहित भेंट की गई वस्तु का स्वागत करते थे।

यथार्थ में देखा जाय तो सद्गुरु साईबाबा से अधिक दयालु और हितैषी दूसरा इस संसार में कौन हो सकता है? उनकी तुलना (समानता) समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि या कामधेनु से भी नहीं हो सकती। जिस अमूल्य निधि की उपलब्धि हमें सद्गुरु से होती है, वह कल्पना से भी परे है।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आये हुए एक धनाढ्य व्यक्ति को श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार उपदेश किया, उसे अब श्रवण करें।

एक धनी व्यक्ति (दुर्भाग्य से मूल ग्रंथ में उसका नाम और परिचय नहीं दिया गया है) अपने जीवन में सब प्रकार से संपन्न था। उसके पास अतुल सम्पत्ति, घोड़े, भूमि और अनेक दास और दासियाँ थीं। जब बाबा की कीर्ति उसके कानों तक पहुँची तो उसने अपने एक मित्र से कहा कि "मेरे लिए अब किसी वस्तु की अभिलाषा शेष नहीं रह गई है, इसलिये अब शिरडी जाकर बाबा से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये और यदि

किसी प्रकार उसकी प्राप्ति हो गई तो फिर मुझसे अधिक सुखी और कौन हो सकता है?" उनके मित्र ने उन्हें समझाया कि "ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज नहीं है, विशेषकर तुम जैसे मोहग्रस्त को, जो सदैव स्त्री, सन्तान और द्रव्योपार्जन में ही फँसा रहता है। तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की आकांक्षा की पूर्ति कौन करेगा, जो भूलकर भी कभी एक फूटी कौड़ी का भी दान नहीं देता?"

अपने मित्र के परामर्श की उपेक्षा कर वे आने-जाने के लिये एक ताँगा लेकर शिरडी आये और सीधे मसजिद पहुँचे। साईबाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे और प्रार्थना की कि "आप यहाँ आनेवाले समस्त लोगों को अल्प समय में ही ब्रह्म-दर्शन करा देते हैं, केवल यही सुनकर मैं बहुत दूर से इतना मार्ग चलकर आया हूँ। मैं इस यात्रा से अधिक थक गया हूँ। यदि कहीं मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाय तो मैं यह कष्ट उठाना अधिक सफल और सार्थक समझूँगा।"

बाबा बोले, "मेरे प्रिय मित्र! इतने अधीर न होओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही ब्रह्म का दर्शन करा दूँगा। मेरे सब व्यवहार तो नगद ही हैं और मैं उधार कभी नहीं करता। इसी कारण अनेक लोग धन, स्वास्थ्य, शक्ति, मान, पद आरोग्य तथा अन्य पदार्थों की इच्छापूर्ति के हेतु मेरे समीप आते हैं। ऐसा तो कोई बिरला ही आता है, जो ब्रह्मज्ञान का पिपासु हो। भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से यहाँ आने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं, परन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का आगमन बहुत ही दुर्लभ है। मैं सोचता हूँ कि यह क्षण मेरे लिये बहुत ही धन्य तथा शुभ है, जब आप सरीखे महानुभाव यहाँ पधारकर मुझे ब्रह्मज्ञान देने के लिये जोर दे रहे हैं। मैं सहर्ष आपको ब्रह्म-दर्शन करा दूँगा।"

यह कहकर बाबा ने उन्हें ब्रह्म-दर्शन कराने के हेतु अपने पास बिठा लिया और इधर-उधर की चर्चाओं में लगा दिया, जिससे कुछ समय के लिये वे अपना प्रश्न भूल गये। उन्होंने एक बालक को बुलाकर नन्दू मारवाड़ी के यहाँ से पाँच रुपये उधार लाने को भेजा। लड़के ने वापस आकर बतलाया कि नन्दू का तो कोई पता नहीं है और उसके घर पर ताला पड़ा है। फिर बाबा ने उसे दूसरे व्यापारी के यहाँ भेजा। इस बार भी लड़का रुपये लाने में असफल ही रहा। इस प्रयोग को दो-तीन बार दुहराने पर भी उसका परिणाम पूर्ववत् ही निकला।

इमें ज्ञात ही है कि बाबा स्वयं सगुण ब्रह्म के अवतार थे। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इस पाँच रुपये सरीखी तुच्छ राशि की यथार्थ में उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? और उस ऋण को प्राप्त करने के लिये इतना कठिन परिश्रम क्यों किया गया? उन्हें तो इसकी

बिलकुल आवश्यकता ही न थी। वे तो पूर्ण रीति से जानते होंगे कि नन्दूजी घर पर नहीं हैं। यह नाटक तो उन्होंने केवल अन्वेषक के परीक्षार्थ ही रचा था। ब्रह्मजिज्ञासु महाशय जी के पास नोटों की अनेक गड़्डियाँ थीं और यदि वे सचमुच ही ब्रह्मज्ञान के आकांक्षी होते तो इतने समय तक शान्त न बैठते। जब बाबा व्यग्रतापूर्वक पाँच रुपये उधार लाने के लिये बालक को यहाँ-वहाँ दौड़ा रहे थे तो वे दर्शक बने ही न बैठे रहते। वे जानते थे कि बाबा अपने वचन पूर्ण कर ऋण अवश्य चुकायेंगे। यद्यपि बाबा द्वारा इच्छित राशि बहुत ही अल्प थी, फिर भी वह स्वयं संकल्प करने में असमर्थ ही रहा और पाँच रुपया उधार देने तक का साहस न कर सका। पाठक थोड़ा विचार करें कि ऐसा व्यक्ति बाबा से ब्रह्मज्ञान, जो विश्व की अति श्रेष्ठ वस्तु है, उसकी प्राप्ति के लिये आया है। यदि बाबा से सचमुच प्रेम करने वाला अन्य कोई व्यक्ति होता तो वह केवल दर्शक न बनकर तुरन्त ही पाँच रुपये दे देता। परन्तु इन महाशय की दशा तो बिलकुल ही विपरीत थी। उन्होंने न रुपये दिये और न शान्त ही बैठे, वरन् वापस जल्द लौटने की तैयारी करने लगे और अधीर होकर बाबा से बोले कि "अरे बाबा! कृपया मुझे शीघ्र ब्रह्मज्ञान दो।" बाबा ने उत्तर दिया कि "मेरे प्यारे मित्र! क्या इस नाटक से तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया? मैं तुम्हें ब्रह्मदर्शन कराने का ही तो प्रयत्न कर रहा था! संक्षेप में तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का दर्शन करने के लिये पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है:- (१) पाँच प्राण (२) पाँच इन्द्रियाँ (३) मन (४) बुद्धि तथा (५) अहंकार। यह हुआ ब्रह्मज्ञान। आत्मानुभूति का मार्ग भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना।"

श्री साईबाबा ने फिर इस विषय पर विस्तृत वक्तव्य दिया, जिसका सारांश यह है:-

### ब्रह्मज्ञान या आत्मानुभूति की योग्यताएँ

सामान्य मनुष्यों को प्रायः अपने जीवन-काल में ब्रह्म के दर्शन नहीं होते। उसकी प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का भी होना नितान्त आवश्यक है।

#### (१) मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा)

जो सोचता है कि मैं बन्धन में हूँ और इस बन्धन से मुक्त होना चाहे तो इस ध्येय की प्राप्ति के लिये उत्सुकता और दृढ़ संकल्प से प्रयत्न करता रहे तथा प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहे, वही इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलने योग्य है।

## (२) विरक्ति

लोक-परलोक के समस्त पदार्थों से उदासीनता का भाव। ऐहिक वस्तुएँ, लाभ और प्रतिष्ठा, जो कि कर्मजन्य हैं- जब तक इनसे उदासीनता उत्पन्न न होगी, तब तक उसे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने का अधिकार नहीं।

## (३) अन्तर्मुखता

ईश्वर ने हमारी इन्द्रियों की रचना ऐसी की है कि उनकी स्वाभाविक वृत्ति सदैव बाहर की ओर आकृष्ट करती है। हमें सदैव बाहर का ही ध्यान रहता है, न कि अन्तर का। जो आत्मदर्शन और दैविक जीवन के इच्छुक हैं, उन्हें अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी बनाकर अपने आप में ही लीन होना चाहिये।

## (४) पाप से शुद्धि

जब तक मनुष्य दुष्टता त्याग कर दुष्कर्म करना नहीं छोड़ता, तब तक न तो उसे पूर्ण शान्ति ही मिलती है और न मन ही स्थिर होता है। वह मात्र बुद्धि बल द्वारा ज्ञान-लाभ कदापि नहीं कर सकता।

## (५) उचित आचरण

जब तक मनुष्य सत्यवादी, त्यागी और अन्तर्मुखी बनकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये जीवन व्यतीत नहीं करता, तब तक उसे आत्मोपलब्धि संभव नहीं।

## (६) सारवस्तु ग्रहण करना

दो प्रकार की वस्तुएँ हैं-नित्य और अनित्य। पहली आध्यात्मिक विषयों से संबंधित है तथा दूसरी सांसारिक विषयों से। मनुष्यों को इन दोनों का सामना करना पड़ता है। उसे विवेक द्वारा किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। विद्वान् पुरुष अनित्य से नित्य को श्रेयस्कर मानते हैं, परन्तु जो मूढ़मति हैं, वे आसक्तियों के वशीभूत होकर अनित्य को ही श्रेष्ठ जानकर उस पर आचरण करते हैं।

## (७) मन और इन्द्रियों का निग्रह

शरीर एक रथ है। आत्मा उसका स्वामी तथा बुद्धि सारथी है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ उसके घोड़े। इन्द्रिय-नियंत्रण ही उसका पथ है। जो अल्प बुद्धि हैं और जिनके मन चंचल हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान हैं, वे अपने गन्तव्य

स्थान पर नहीं पहुँचते तथा जन्म-मृत्यु के चक्र में ही घूमते रहते हैं। परन्तु जो विवेकशील हैं, जिन्होंने अपने मन पर नियंत्रण कर लिया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के उत्तम घोड़ों के समान नियंत्रण में हैं, वे ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच पाते हैं, अर्थात् उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि द्वारा मन को वश में कर लेता है, वह अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर, उस सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु के लोक में पहुँच जाता है।

## (८) मन की पवित्रता

जब तक मनुष्य निष्काम कर्म नहीं करता, तब तक उसे चित्त की शुद्धि एवं आत्म-दर्शन संभव नहीं है। विशुद्ध मन में ही विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं, जिससे आत्म-दर्शन के पथ में प्रगति हो जाती है। अहंकारशून्य हुए बिना तृष्णा से छुटकारा पाना संभव नहीं है। विषय-वासना आत्मानुभूति के मार्ग में विशेष बाधक हैं। यह धारणा कि मैं शरीर हूँ, एक भ्रम है। यदि तुम्हें अपने जीवन के ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) को प्राप्त करने की अभिलाषा है तो इस धारणा तथा आसक्ति का सर्वथा त्याग कर दो।

## (९) गुरु की आवश्यकता

आत्मज्ञान इतना गूढ़ और रहस्यमय है कि मात्र स्वप्रयत्न से उसकी प्राप्ति संभव नहीं। इस कारण आत्मानुभूति प्राप्त गुरु की सहायता परम आवश्यक है। अत्यन्त कठिन परिश्रम और कष्टों के उपरान्त भी दूसरे क्या दे सकते हैं, जो ऐसे गुरु की कृपा से सहज में ही प्राप्त हो सकता है? जिसने स्वयं उस मार्ग का अनुसरण कर अनुभव कर लिया हो, वही अपने शिष्य को भी सरलतापूर्वक पग-पग पर आध्यात्मिक उन्नति करा सकता है।<sup>१</sup>

## (१०) अन्त में ईश-कृपा परमावश्यक है।

जब भगवान् किसी पर कृपा करते हैं तो वे उसे विवेक और वैराग्य देकर इस भवसागर से पार कर देते हैं। यह आत्मानुभूति न तो नाना प्रकार की विद्याओं और बुद्धि द्वारा हो सकती है और न शुष्क वेदाध्ययन द्वारा ही। इसके लिए जिस किसी को यह आत्मा वर्ण करती है, उसी को प्राप्त होती है तथा उसी के सम्मुख वह अपना स्वरूप प्रकट करती है - कठोपनिषद् में ऐसा ही वर्णन किया गया है।

१. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिश्रमेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ - गीता ४ ॥ ३४ ॥



## बाबा का उपदेश

जब यह उपदेश समाप्त हो गया तो बाबा उन महाशय से बोले कि “अच्छा, महाशय! आपकी जेब में पाँच रुपये के पचास गुने रुपयों के रूप में ब्रह्म है, उसे कृपया बाहर निकालिये।” उसने नोटों की गड़ड़ी बाहर निकाली और गिनने पर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वे दस-दस के पचीस नोट थे। बाबा की यह सर्वज्ञता देखकर वे महाशय द्रवित हो गये और बाबा के चरणों पर गिरकर आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगे। तब बाबा बोले कि “अपना ब्रह्म का (नोटों का) यह बण्डल लपेट लो। जब तक तुम्हारा लोभ और ईर्ष्या से पूर्ण छुटकारा नहीं हो जाता, तब तक तुम ब्रह्म के सत्यस्वरूप को नहीं जान सकते। जिसका मन धन, सन्तान और ऐश्वर्य में लगा है, वह इन सब आसक्तियों को त्यागे बिना कैसे ब्रह्म को जानने की आशा कर सकता है? आसक्ति का भ्रम और धन की तृष्णा दुःख का एक भँवर (विवर्त) है, जिसमें अहंकार और ईर्ष्या रूपी मगरों को वास है। जो निरिच्छ होगा, केवल वही यह भवसागर पार कर सकता है। तृष्णा और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध इसी प्रकार के हैं। अतः वे परस्पर कट्टर शत्रु हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं:-

“जहाँ राम तहाँ काम नहि, जहाँ काम नहि राम।

तुलसी कबहूँ होत नहि, रवि रजनी इक ठाम ॥”

“जहाँ लोभ है, वहाँ ब्रह्म के चिन्तन या ध्यान की गुंजाइश ही नहीं है। फिर लोभी पुरुष को विरक्ति और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? लालची पुरुष को न तो शान्ति है और न सन्तोष ही; और न वह दृढ़ निश्चयी ही होता है। यदि कण मात्र भी लोभ मन में शेष रह जाये तो समझना चाहिये कि सब साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं। एक उत्तम साधक यदि फलप्राप्ति की इच्छा या अपने कर्तव्यों का प्रतिफल पाने की भावना से मुक्त नहीं है और यदि उनके प्रति उसमें अरुचि उत्पन्न न हो तो सब कुछ व्यर्थ ही हुआ। वह आत्मानुभूति प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। जो अहंकारी तथा सदैव विषय-चिन्तन में रत है, उन पर गुरु के उपदेशों तथा शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः मन की पवित्रता अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि उसके बिना आध्यात्मिक साधनाओं का कोई महत्त्व नहीं तथा वह निरा दम्भ ही है। इसलिये श्रेयस्कर यही है कि जिसे जो मार्ग बुद्धिगम्य हो, वह उसे ही अपनाये। मेरा खजाना पूर्ण है और मैं प्रत्येक की इच्छानुसार उसकी पूर्ति कर सकता हूँ; परन्तु मुझे पात्र की योग्यता-अयोग्यता का भी

ध्यान रखना पड़ता है। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, यदि तुम उसे एकाग्र होकर सुनोगे तो तुम्हें निश्चय ही लाभ होगा। इस मसजिद में बैठकर मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। जब घर में किसी अतिथि को निमंत्रण दिया जाता है तो उसके साथ परिवार, अन्य मित्र और सम्बन्धी आदि भी भोजन करने के लिये आमंत्रित किये जाते हैं।” बाबा द्वारा धनी महाशय को दिये गये इस ज्ञान-भोज में मसजिद में उपस्थित सभी जन सम्मिलित थे। बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर सभी लोग उन धनी महाशय के साथ हर्ष और संतोषपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट गये।

## बाबा का वैशिष्ट्य

ऐसे सन्त अनेक हैं, जो घर त्याग कर जंगल की गुफाओं या झोपड़ियों में एकान्त वास करते हुए अपनी मुक्ति या मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न करते रहते हैं। वे दूसरों की किंचित् मात्र भी अपेक्षा न कर सदा ध्यानस्थ रहते हैं। श्री साईबाबा इस प्रकृति के न थे। यद्यपि उनके कोई घर द्वार, स्त्री और सन्तान, समीपी या दूर के संबंधी न थे, फिर भी वे संसार में ही रहते थे। वे केवल चार-पाँच घरों से भिक्षा लेकर सदा नीमवृक्ष के नीचे निवास करते तथा समस्त सांसारिक व्यवहार करते रहते थे। इस विश्व में रहकर किस प्रकार आचरण करना चाहिये, इसकी भी वे शिक्षा देते थे। ऐसे साधु या सन्त प्रायः बिरले ही होते हैं, जो स्वयं भगवत्प्राप्ति के पश्चात् लोगों के कल्याणार्थ प्रयत्न करें। श्री साईबाबा इन सब में अग्रणी थे, इसलिये हेमाडपंत कहते हैं:-

“वह देश धन्य है, वह कुटुम्ब धन्य है तथा वे माता-पिता धन्य हैं, जहाँ साईबाबा के रूप में यह असाधारण परम श्रेष्ठ, अनमोल विशुद्ध रत्न उत्पन्न हुआ।”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

